॥ ॐ ॥

योग की पूर्णता = वासुदेवः सर्वम् ।

श्री गीता में अर्जुन को जब भगवान श्रीकृष्ण ने ज्ञानयोग, कर्मयोग, अष्टांग योगादि की विधियों का ज्ञान दिया, जिससे साधक का मन शांत होकर ईश्वर में एकाग्र हो जाय और ब्रह्मतत्व को प्राप्त कर सके। तो अर्जुन ने स्वाभाविक प्रश्न किया कि —

हे! मधुसूदन आपने जो योग की विधियाँ बताई है, वह मुझे ~~अव्यवहा~~ अव्यवहारिक और अस्थाई लगती है, क्योंकि मन बड़ा ही चंचल है।

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥ ६/३४

साधारण परिस्थिति में इस संसार में जहाँ प्रत्येक कार्य क्रिया द्वारा ही होता है, मन हर क्षण अशान्त रहता हर समय मानसिक क्लेश और अन्य समस्याओं से मुक्ति पाने का हल ढूढ़ने में ही व्यस्त रहता है। संसार का स्वभाव ही ऐसा है, कि हम चिन्ताओं से मुक्त नहीं हो पाते। अतः अर्जुन की आशंका स्वाभाविक है। वह भगवान को मधुसूदन कहकर सम्बोधित करता है, क्योंकि भगवान ने मधु नामक एक बड़े राक्षस का वध किया था। अर्जुन भी मन को एक बड़ा राक्षस मानता है इसलिये भगवान से विनम्र प्रार्थना करता है, कि मेरा मन मधु राक्षस से भी बलवान है, दृढ़ है इसको वश में करना आँधी के वश में करने के समान कठिन है। इसलिये आप कृपा करके इस चंचल मन को मार दें तो, आपने योग की जो विधियां बताई है, मेरे लिये वह करना सम्भव हो सकता है।

तब भगवान कहते है — हे! कुन्तिनन्दन निःसन्देह चंचल मन का संयम करना कठिन है। परन्तु अभ्यास और वैराग्य से मन वश में हो सकता है।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ ६/३५

तब भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि

तस्मात् योगी भवार्जुन — हे! अर्जुन तू योगी हो जा अर्थात् तू मेरा निरन्तर मेरा चिन्तन करता हुआ मुझसे योग कर ले। कोई भी स्त्री - पुरुष, गृहस्थ - ब्रह्मचारी घर में रहते हुये, अपने नियत कर्मों को करते हुये, श्रद्धा-प्रेम भाव से मेरा चिन्तन करते हुये अनासक्त होकर अपने कर्तव्यों को करते हुये, जो तुम खाते हो, जो हवन करते हो, जो दान देते हो, जो तप करते हो वह मेरे को अर्पण कर दो।

इस प्रकार तुम जो भी पत्र-पुष्प-फल-जल निष्काम भाव से मुझे अर्पण करते हो, वह मैं सगुण-रूप होकर प्रीति सहित खाता हूँ।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥ ९/३४

वैराग्य की प्राप्ति — इस प्रकार मुझमें मनवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करने वाला हो, मुझे प्रणाम कर। इस प्रकार आत्मा में मुझको नियुक्त करके मेरे परायण हो — ऐसे चिन्तन से तू वैराग्य को प्राप्त होगा। संन्यास योग के चित्त वाला हो कर शुभ-अशुभ के फल के बन्धन से भी मुक्त हो जायगा। योग के चित्त वाला होकर तू मुझको ही प्राप्त होगा।

अभ्यास —

जो साधक प्रेम-श्रद्धा भाव से मेरी नवधा भक्ति के श्रवणं, कीर्तनं, स्मरणं, पादसेवनम्, अर्चनं, वन्दनं, जपादि तथा आत्मनिवेदनम् द्वारा मेरे चिन्तन का अभ्यास करता है, उनका मन मुझमें एकाग्र होने लगता है। इनमें से श्रवण और कीर्तनम् का सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसको सामूहिक रूप से, सरलता से और सभी जगह किया जा सकता है।

चैतन्य महाप्रभु ने कीर्तन के महत्त्व को बताते हुये कहते है, कि "कलह और विवादों के इस युग में हरिनाम के अतिरिक्त और आत्मसाक्षात्कार का कोई अन्य विधि नहीं है, कोई विधि नहीं है कोई विधि नहीं है"

जब भक्ति भाव से भक्तगण संकीर्तन करते हुये भगवान को याद करते है, तो यह दिव्य ध्वनि तरंग भगवान का ही रूप होता है, और भगवान हमारे साथ होते है

इस प्रकार शरीर और मन का संयम रखते हुये निरन्तर अभ्यास से साधक पवित्र हो जाता है, धीरे-धीरे अज्ञानी भी अभ्यास और समर्पण से साधक हो जाता है और साधक ज्ञानी हो जाता है। उसका उत्तरोत्तर आत्मिक विकास होने लगता है। इसी से भगवान अर्जुन से कहते है कि जो मनुष्य अपने उद्धार हेतु भगवत् प्राप्ति का थोड़ा भी अभ्यास कर्म और भक्ती भक्ति करते है उनका कभी पतन नहीं होता

वैराग्य और अभ्यास द्वारा भगवान का चिन्तन करने वाला भक्त का निरन्तर आत्मिक विकास होने लगता है।

1. जीवन संतुलित हो जाता है - भौतिक द्वन्द्व- सुख - दुःख, मान - अपमान आदि समाप्त होने लगते है। जगत का आकर्षण कम होने लगता है।

2. कृष्ण सेवा से मन वश में हो जाता है - कृष्ण भावना में रहने से दिव्य आनन्द और आन्तरिक सुख मिलने से मन शांत हो जाता है अतः स्वतः भगवान में मन एकाग्र होने लगता है

3 सर्वभूत रतः - भक्त जब कृष्ण भावना में रहते हुये अपने सभी कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हुये असंग मन से सभी कर्मों को और उसके फल को परोपकार में और भगवान में अर्पण कर देता है तो उसके सभी कर्म बन्धन समाप्त होने लगते है और वह निर्मल होकर शांति को प्राप्त करता है।

4 चेतना वश में होती है — साधक को क्रमशः विवेक जाग्रत होने लगता है, उसे ज्ञान हो जाता है कि नियन्ता केवल ईश्वर है, वही सब करता है तो उसका अहं मिटने लगता है, भेद-भाव मिटने लगता है - चेतना - ज्ञान हो जाता है।

5 शरणागति - जब भक्त अपने सब कर्मों और स्वयं अपने को गोविन्द में समर्पण कर देता है - 'मेरे तो गिरधर गोपाल - दूसरा न कोई।' उसे ज्ञान हो जाता है कि वह ईश्वर का अंश है। "ईशावास्य मिदं यत्किंचित जगत्यां जगत" वह संशय मुक्त हो जाता है। जगत में जो कुछ भी वह ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। स्वामी सुखदासजी कहते हैं "~~ज्ञान कि~~ ज्ञान किसी अभ्यास से पैदा नहीं होता वरन् जो वास्तव में है, उसको वैसा अर्थात् जान लेने का नाम ज्ञान है। 'वासुदेवः सर्वम्' सब कुछ परमात्मा ही है - यह स्वतः सिद्ध है। यही ज्ञान है।"

"वह महात्मा समदर्शी हो जाता है। ज्ञानी भक्त यह जान जाता है कि जितना संसार - चर - अचर - पहाड़ - पेड़ - पत्थर - समुद्र - पशु - पक्षी - मनुष्य के रूप में है वह सब एक परमात्मा ~~तत्व~~ से ही पूर्ण है। जगत का मूल कारण ईश्वर ही है। यह ~~सब~~ संसार परमात्मा का बाहर का चोल है। जो प्रतिक्षण परिवर्तनशील और विनाशी है। परन्तु उसके अन्दर सत्ता रूप में केवल परमात्मा है जो अपरिवर्तनशील और अविनाशी है। यही जानना तत्व से जानना है।

तत्व ज्ञानी भक्त का अहं मिट जाता है वह समदर्शी हो जाता है तभी भगवान कहते हैं कि — ज्ञानी भक्त ~~व~~ सब भूतों में आत्मरूप से मुझ वासुदेव को और मुझ वासुदेव को सब भूतों में व्यापक देखता है। मेरे लिये वह अदृश्य नहीं होता है। वह महात्मा हो जाता है। इसी लिये मुझे ज्ञानी सबसे प्रिय है।

बहूनां जन्मनान्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ ७/१९

भगवान कहते हैं कि ऐसा ज्ञानी, समता वाला महात्मा सुदुर्लभ है जो अनेक जन्मों की साधना तपस्या के बाद पैदा होता है। वह शुद्ध मोक्ष मय भगवान की सेवा में लीन रहता है। वह निरवैरी होता है। ईश्वर को सर्व लोक का महेश्वर मानता है और सब कुछ वासुदेव ही है। ऐसा सम बुद्धि योग से युक्त होकर साधन करने वाला सब पुण्य फलों का उल्लंघन कर जाता है और सनातन पद को प्राप्त करता है योगी पूर्णत्व को प्राप्त हो ब्रह्मलीन हो जाता है।